International Journal of Research in Hindi
www.hindijournal.in
ISSN: 2582-3493
Received: 30-01-2023, Accepted: 15-02-2023, Published: 03-03-2023
Volume 5, Issue 1, 2023, Page No. 11-13

कबीर–दर्शन की व्यवहारिकता

आशा रानी
सहायक प्रध्यापिका, हिंदी विभाग, के. एल. पी. कॉलेज, रेवाड़ी, हरियाणा, भारत

सारांश
भक्तिकाल का हिन्दी: साहित्य के इतिहास में ही नहीं, वरन् भारतीय इतिहास में भी विशेष महत्त्व है। इस काल के दौरान संवत् 1400 से संवत् 1700 तक चले भक्ति–आंदोलन ने मध्यकालीन विदेशी आक्रमणों की शिकार, पराधीन, शोषित, हताश और व्याकुल जनता को एक रोशनी प्रदान की परंतु धार्मिक कट्टरता के कारण समाज में अशांति का माहौल था। सभी धर्म बाह्य आडंबरों और पाखंडों के साथ अपना – अपना राग अलाप रहे थे। इस होड़ में समाज खंड–खंड हो रहा था। इसी बीच जीवन के परम लक्ष्यों और मानवता के सभी गुणों से दूर लोगों में सच्चे ज्ञान की ज्योति जलाने वाले विचारक एवं समाज–सुधारक कबीरदास जी ने विशेष योगदान दिया।
निर्गुण भक्ति–धारा के उपासक और संत–कवि कबीरदास जी ने समाज की कुरीतियों, साँप्रदायिक वैमनस्यों और पाखंडों पर निर्भीकता से प्रहार ही नहीं किया बल्कि योग–साधना के द्वारा प्राप्य ईश्वर का वास व्यक्ति के हृदय में ही बताकर विवाद को निरर्थक करार दिया। उनके अनुसार, ईश्वर से साक्षात्कार के लिए जीवन में सत्याचरण, शील, संतोष, नाम–स्मरण जैसे उच्च गुणों का होना आवश्यक है और इन गुणों को ग्रहण करने में गुरू के मार्गदर्शन और सत्संगति का विशेष महत्त्व है।
इस प्रकार कबीरदास जी ने अपने दार्शनिक विचारों को जीवन की वास्तविकताओं से जोड़ा और समाज में प्रचलित समस्याओं का व्यवहारिक समाधान प्रस्तुत किया। हरिहर प्रसाद गुप्त जी भी लिखते है– ''कबीर जी ने युग–समस्याओं को पहचाना। उनके समाधान में उनके दर्शन–धर्म का विकास हुआ। उन्होंने धर्म को जीवन से, यथार्थ से जोड़ा–यही सर्जनात्मक स्वरूप 'कबीर' को 'कबीर' बनाता है''

मूल शब्दः कबीर–दर्शन, भक्ति–आंदोलन, निर्गुण भक्ति–धारा

प्रस्तावना

'दर्शन' शब्द संस्कृत भाषा की 'दृश' धातु से बना है जिसका अर्थ है–देखना। सत्य के वास्तविक स्वरूप को देखना या जानना ही दर्शन है। इसके अंतर्गत जीव, जगत, आत्मा, परमात्मा से जुड़े सत्यों की खोज की जाती है। जीवन से जुड़े विभिन्न प्रश्नों के संबंध में व्यक्ति के अपने विचार व सिद्धांत होते हैं। कबीर जी ने जीवन, जगत और परमात्मा के स्वरूप के विषय में जो विचार प्रकट किए हैं वे बड़े ही व्यवहारिक एवं सहज हैं।
कबीर जी के समय में मंदिर, मस्जिद, मूर्ति–पूजा आदि को सिर्फ भक्ति का माध्यम न मानकर हिंदू–मुस्लिमों ने इन्हें दंगों और विवाद का विषय बना लिया था। जिससे समाज में अशांति फैल रही थी और सभी लोग धर्म के वास्तविक मर्म को भूल रहे थे। ऐसी परिस्थिति मं कबीर जी ने इन सबको आडंबर बताकर स्पष्ट शब्दों में इनका विरोध किया। पं. यदुनन्दन मिश्र का कहना है, ''धार्मिक विचार तो इनके विचित्र थे। बाह्याडम्बरों को घृणा की दृष्टि से देखते थे। मस्जिद, मंदिर, कुरान, वेद, पुराण सबको खरी – खोटी सुनाते थे। जाति – पाति के कट्टर विरोधी थे। जो इन्हें सत्य प्रतीत होता था, उसको कहने में जरा भी नहीं हिचकते थे।''[2]. मूर्ति–पूजा पर कबीर जी ने इस प्रकार व्यंग्य किया है–

''पाहन को क्या पूजिये, जो नहिं देइ जवाब। अंधा नर आसामुखी, योंहीं होय खराब।''[3]

अर्थात् मूर्ति के रूप में पत्थर को पूजना व्यर्थ है, वह तो प्रश्न का उत्तर भी नहीं देती है किंतु अज्ञानी मनुष्य उससे आशा रखने के कारण व्यर्थ ही खराब हो जाता है, कबीर जी ने धर्म के नाम पर किए जाने वाले आडंबरों का विरोध ही नहीं किया बल्कि ईश्वर से भेंट करने का मार्ग भी बताया। उनके अनुसार, ईश्वर–प्राप्ति के लिए हमें कहीं भी भटकने की आवश्यकता नहीं, वह तो सभी के हृदय में ज्योति–रूप मे वास करता है–

''मन माथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जान। दस द्वारे का देहरा, ता में जोति पिछान।।''[4]. अर्थात व्यक्ति का मन या हृदय ही मथुरा, द्वारिका और काशी हैं। मन ही तीर्थस्थल है। अतः व्यक्ति को ईश्वर की तलाश में कहीं भी जाने की आवश्यकता नहीं। शरीर का दसवां द्वार ब्रह्मरंध्र ही देवालय है, उसी में ज्योति स्वरूप ईश्वर के दर्शन किए जा सकते हैं। सत्याचरण का मार्ग एक कठिन मार्ग हैं। इस पर चलते हुए अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इसी, कारण इस पर चलना एक तपस्या के समान है और इस तपस्या से ईश्वर को पाया जा सकता है। सत्याचरण वाला व्यक्ति छल–कपट से दूर रहता है। ईश्वर सभी के मनोभावों को जानते हैं। अतः भाव और व्यवहार में समरूपता रखने के लिए कबीर जी कहते हैं–

''तेरे अंदर साँच जो, बाहर कछु न बनाव। जाननहारा जानिहै, अंतरगति का भाव।।''[5]

अर्थात मनुष्य को मन या हृदय से सच्चा और निर्मल होना चाहिए, उसे अच्छा होने का दिखावा नहीं करना चाहिए क्योंकि ईश्वर सभी के हृदय के भावों को जानते हैं।
कबीर जी ने गुरू की महत्ता से लोगों को अवगत कराया है। गुरू को वे जीवन में सर्वोच्च स्थान पर मानते हैं। मिथ्या सांसारिक आकर्षण और मोहमाया व्यक्ति को अपन ` लक्ष्य से भटका सकती हैं। गुरू ही उसे सतत् जागरूक रखते हुए लक्ष्य –पथ पर अग्रसर रखते हैं। गुरू की महानता प्रकट करते हुए कबीर जी कहते हैं–

> ''गुरू को सिर पर राखिये, चलिये आज्ञा माहिं। कहे कबीर ता दास को, तीन लोक डर नाहिं।[6].

अर्थात गुरू को हमें सर्वश्रेष्ठ समझना चाहिए और गुरू की आज्ञा का पूर्ण श्रद्धा से पालन करना चाहिए। कबीर जी कहते हैं कि

जो गुरू का ऐसा दास बनकर रहता है, उसे तीनों लोकों में कहीं भी किसी प्रकार का डर नहीं रहता। सज्जन व्यक्ति स्वयं तो सद्गुणों से युक्त होता ही है, अपनी संगत में आने वालों पर भी अपने सद्गुणों की सुगंध बिखेर देता है जिन्हें प्राप्त कर व्यक्ति अपने जीवन को सार्थक व सफल बना सकता है। जबकि दुर्जन अपने समान सभी में दुर्गुणों और दुर्बुद्धि का ही संचार करता है। कबीर जी सज्जनों की संगति को बढ़ावा देते हुए कहते हैं–

''कबीर संगत साध की, नित प्रति कीजै जाए। दुर्मति दूर बहावसी, देसी सुमति बताय।।''[7]

अर्थात् हमें नित्य ही सज्जनों की संगति करनी चाहिए। सज्जनों की संगति दुर्बुद्धि को दूर करती है और सद्बुद्धि प्रदान करती है। सज्जनों की संगति में रहने वाला व्यक्ति किसी का बुरा नहीं सोचता, सभी का कल्याण ही चाहता है। कबीर जी 'राम' नाम का स्मरण करते रहते थे। उनके राम दशरथनंदन राम से अलग निर्गुण राम थे। उनके निर्गुण राम के विषय में रामचंद्र शुक्ल जी का भी मत है, ''इसमें कोई संदेह नहीं कि कबीर को 'राम' नाम रामानंद जी से प्राप्त हुआ। पर आगे चलकर कबीर के 'राम' रामानंद के 'राम' से भिन्न हो गए। अतः कबीर को वैष्णव सम्प्रदाय के अंतर्गत नहीं ले सकते। कबीर ने दूर–दूर तक देशाटन किया, हठयोगियों तथा सूफी मुसलमान फकीरों का भी सत्संग किया। अतः उनकी प्रवृत्ति निर्गुण उपासना की ओर दृढ़ हुई।''[8]. हमें समय गँवाए बिना ईश्वर के नाम का स्मरण करना चाहिए क्योंकि सांसे कच्ची डोर के समान है जो कभी–भी छूट सकती हैं। ऐसी चेतना भरते हुए कबीर जी कहते हैं–

''कबिरा निर्भय नाम जपु, जब लगि दीवा बाति। तेल घटे बाती बुझै, तब सोवो दिन राति।।''[9].

अर्थात् कबीर जी इच्छा प्रकट करते हैं कि वे निडर होकर निरंतर ईश्वर के नाम का स्मरण करते रहें जब तक कि दीपक में बाती है अर्थात् जब तक शरीर में प्राण हैं। क्योंकि जिस प्रकार तेल घटने पर बाती बुझ जाती है उसी प्रकार उम्र बीतने पर जीवन समाप्त हो जाता है। तब व्यक्ति दिन–रात के लिए गहरी नींद में सो जाता है, मृत हो जाता है। अतः जीवन रहते नाम–स्मरण करते रहना चाहिए। संतोष–धन परम धन होता है। संतों का सदा मानना है– 'संतोषी सदा सुखी'। संतोषी व्यक्ति अपनी स्थिति से खुश रहता है। लालसा की प्रवृत्ति व्यक्ति का सुख चैन समाप्त कर देती है, व्यक्ति सब–कुछ होते हुए भी संतुष्ट नहीं रह पाता, वह जीवन–भर अधिक की कामना में संचय में लगा रहता है। अतः सुखी रहने का मंत्र देते हुए और संचय की प्रवृत्ति का त्याग करने हेतु कबीर जी कहते हैं–

''साईं इतना दीजिए, जा में कुटुँब समाय। मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाए।।''[10].

अर्थात् हमें ईश्वर से इतना ही माँगना चाहिए जिससे हमारे परिवार का निर्वाह हो सके। न ही हमें भूखा रहना पड़े और यदि द्वार पर कोई महात्मा आता है तो उसे भी बिना कुछ दिए खाली हाथ न लौटाना पड़े। इस प्रकार अधिक की लालसा नहीं करनी चाहिए और जीवन के लिए पर्याप्त अन्न–धन अवश्य होना चाहिए।

शील स्वभाव से किसी को भी वश में किया जा सकता है। किसी के दुराचार का जवाब यदि दुराचार से दिया जाए तो वह विवाद और हिंसा को बढ़ाता है। धैर्य, क्षमा और शांत स्वभाव के द्वारा शत्रु को भी जीता जा सकता है। कबीर जी ने क्षमा–भाव से युक्त शील स्वभाव को इतना प्रभावशाली बताया है कि इससे हर परिस्थिति सँभाली जा सकती है–

''करगस सम दुर्जन वचन, रहै संत जन टारि। बिजुली परै समुद्र में, कहा सकैगी जारि।।''[11].

अर्थात् बुरे व्यक्ति के वचन तीर के समान तीक्ष्ण होते हैं और संत जन ऐसे बुरे वचनों से भी प्रभावित नहीं होते। जिस प्रकार समुद्र में बिजली भी गिर जाए तो वह उसे जला नहीं सकती, उसी प्रकार संत जन अपार शील और धैर्य से युक्त होते है जो कड़वे वचनों को सुनकर क्रोधित नहीं होते। अच्छे – बुरे कार्यों का परिणाम भी वैसा ही होता है। किसी भी कार्य को करने से पहले उसके परिणामों पर विचार अवश्य कर लेना चाहिए। बिना सोचे–समझे कार्य करने से बाद में पछताना पड़ सकता है लेकिन तब पछताने से कोई लाभ नहीं होता। पछताकर स्थिति को पूर्ववत नहीं बनाया जा सकता। अतः ऐसी व्यथित कर देने वाली अवस्था से बचने के लिए कार्य के परिणाम पर पहले ही पूर्ण विचार कर लेना बेहतर है–

''करता था तो क्यूँ रहा, अब करि क्यूँ पछिताय। बोवे पेड़ बबूल का, आम कहाँ ते खाय।।''[12].

अर्थात् परिणाम की फिक्र किए बिना बुरे कार्य में लीन रहा जाए तो बाद में पछताने का कोई लाभ नहीं रहता। जिस प्रकार बबूल का पेड़ बोलकर उससे आम प्राप्त नहीं किए जा सकते उसी प्रकार जैसा कर्म किया जाता है, वैसा ही फल भोगना पड़ता है।

निष्कर्षः इस प्रकार हम देखते हैं कि कबीर जी का दर्शन पुस्तकों पर आधारित न होकर जीवन की वास्तविकताओं पर आधारित हैं। उन्होंने भारत के विविधतापूर्ण समाज की समस्याओं को देखा विश्लेषण किया और ऐसे समाज में लोगों द्वारा अनुकरणीय समाधान प्रस्तुत किया। उनका दर्शन किसी एक धर्म, समाज या काल की मान्यताओं का पक्ष न लेकर सभी धर्मों, समाज व काल से तटस्थ है क्योंकि यह मानवता के धरातल पर आधारित है। ये विशेषताएँ कबीर जी के दार्शनिक विचारों को व्यवहारिक बनाती हैं। आम जनता के बीच अपने विचारों के प्रचार का माध्यम उन्हीं की भाषा अर्थात् आम बोलचाल की भाषा और दोहों को चुना। उनके ज्ञानपरक दोहे आज भी समाज में प्रसिद्ध हैं और जहाँ – तहाँ गुँजायमान होते हुए ज्ञान – चक्षुओं को खोलकर उच्च विचारों के प्रेरक बनते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कबीर–ग्रंथावलीः लेखक– हरिहर प्रसाद गुप्त, प्रथम संस्करण, पृष्ठ–15
2. हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास : लेखक पं. यदुनन्दन मिश्र, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ–20
3. कबीर साखी–संग्रहः लेखक–पं. महावीर प्रसाद मालवीय, पृष्ठ–183 4. कबीर साखी–संग्रह : लखे ाक–पं. महावीर प्रसाद मालवीय, पृष्ठ–184
4. कबीर साखी–संग्रहः लेखक–पं. महावीर प्रसाद मालवीय, पृष्ठ – 158
5. कबीर साखी–संग्रहः लेखक–पं. महावीर प्रसाद मालवीय, पृष्ठ – 2
6. कबीर साखी–संग्रहः लेखक–पं. महावीर प्रसाद मालवीय, पृष्ठ – 54
7. हिन्दी साहित्य का इतिहासः लेखक– रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ – 76
8. कबीर साखी–संग्रहः लेखक –पं. महावीर प्रसाद मालवीय, पृष्ठ – 102

9. कबीर साखी–संग्रहः लेखक –पं. महावीर प्रसाद मालवीय, पृष्ठ – 82
10. कबीर साख–संग्रहः लेखक –पं. महावीर प्रसाद मालवीय, पृष्ठ – 154
11. कबीर साखी–संग्रहः लेखक –पं. महावीर प्रसाद मालवीय, पृष्ठ – 115